दैनिक जागरण
जीवन की गति कर्म में है

सपा-बसपा एक साथ

सपा और बसपा में तालमेल की विधिवत घोषणा होने के साथ ही एक बार फिर यह रेखांकित हुआ कि भारतीय राजनीति में कुछ भी हो सकता है और एक-दूसरे के प्रबल विरोधी दल भी हाथ मिला सकते हैं। जिस तरह परस्पर विरोधी दलों का एक साथ आना कोई नई बात नहीं उसी तरह उनमें अलगाव होना भी नहीं। आम तौर पर ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि उनकी दोस्ती किसी सीमित लक्ष्य या तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही होती है। अखिलेश यादव और मायावती की ओर से एक मंच पर आकर चाहे जैसे दावे क्यों न किए गए हों, सच यही है कि वे अपनी राजनीतिक जमीन बचाने और आगामी लोकसभा चुनाव में ज्यादा से ज्यादा सीटें हासिल करने के लिए ही एक साथ आए हैं। सपा हो या बसपा या फिर ऐसे ही अन्य क्षेत्रीय दल, वे समाज और देशहित की बातें तो खूब करते हैं, लेकिन राष्ट्रीय महत्व के मसलों पर उनका कोई स्पष्ट नजरिया मुश्किल से ही देखने को मिलता है। कई बार तो राष्ट्रीय मसले उनकी प्राथमिकता में ही नहीं होते। ऐसे दल जब तक राष्ट्रीय मसलों पर प्रभावी नीति और नजरिये के साथ सामने नहीं आते वे राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित नहीं कर सकते। सपा-बसपा गठबंधन तय होते ही यह स्पष्ट हो गया कि उत्तर प्रदेश में इन दोनों दलों की दोस्ती भाजपा के साथ-साथ कांग्रेस के लिए भी चुनौती बनेगी। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस तो पहले से ही बहुत कमजोर है, लेकिन भाजपा पिछली बार जैसा प्रदर्शन करने की उम्मीद कर रही थी। अब उसके लिए ऐसा करना आसान नहीं होने वाला।

कांग्रेस की चाहत के बावजूद अखिलेश यादव और मायावती ने उसे अपने गठबंधन में शामिल करना बेहतर नहीं समझा तो इसका अर्थ है कि भाजपा के खिलाफ अपने नेतृत्व में महागठबंधन बनाने की तैयारी कर राहुल गांधी को सबसे ज्यादा लोकसभा सीटों वाले इस राज्य में अपने दम पर चुनाव लड़ना होगा, लेकिन सपा-बसपा ने जिस तरह अमेठी और रायबरेली में कोई उम्मीदवार न उतारने का फैसला किया उससे यह भी स्पष्ट है कि चुनाव बाद कांग्रेस से तालमेल की संभावनाएं बनाए रखी गई हैं। अगर ऐसे किसी तालमेल की नौबत आती है तो वह राजनीतिक सौदेबाजी का पर्याय न बने तो बेहतर। अच्छा होता कि सपा-बसपा नेता अपने गठबंधन को स्थाई रूप देने के वायदे और भरोसे के साथ सामने आते। अभी भी समय है। दोनों दलों को चाहिए कि वे लोगों का भरोसा अर्जित करने के लिए कोई साझा कार्यक्रम लाएं और उसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता भी प्रकट करें। ऐसा करके ही वे एक बड़ी ताकत बन सकते हैं। सपा-बसपा ने अभी यह साफ नहीं किया कि उनकी ओर से प्रधानमंत्री का दावेदार कौन होगा? यह किसी से छिपा नहीं कि जहां मायावती प्रधानमंत्री बनने की इच्छा रखती हैं वहीं अखिलेश अपने पिता मुलायम सिंह को इस पद पर बैठे देखना चाहते हैं। भले ही सपा-बसपा ने भाजपा के साथ कांग्रेस को भी निशाने पर लिया हो, लेकिन सोनिया गांधी और राहुल गांधी की सीटों का ख्याल रखना यह नहीं कहता कि इन दोनों दलों से समान दूरी बनाए रखी जाएगी।

समाधान की उम्मीद

राज्य सरकार को केंद्र के रुख से बड़ी राहत मिली है। श्रीनगर गढ़वाल स्थित एनआइटी के परिसर को बदलने को लेकर कई तरह से चर्चाएं चल रही थीं। अब इन चर्चाओं पर विराम लग गया है। केंद्र सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि श्रीनगर गढ़वाल से एनआइटी कैंपस को स्थानांतरित नहीं किया जाएगा। इस मामले में केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से गठित उच्चस्तरीय समिति ने भी मंत्रालय को अपनी रिपोर्ट सौंप दी है। इस रिपोर्ट के आधार पर ही केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने राज्य सरकार के सामने अपना रुख साफ किया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि एनआइटी निर्माण के लिए दी गई भूमि अनुपयुक्त नहीं है। पौड़ी जिले के सुमाड़ी गांव में एनआइटी निर्माण को राज्य सरकार ने 300 एकड़ अतिक्रमणरहित भूमि एनआइटी के नाम हस्तांतरित की है। स्थानीय ग्रामीणों ने भी इस संस्थान के निर्माण को 7.611 हेक्टेयर नाप भूमि दान के रूप में दी है। पर्वतीय क्षेत्रों में राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना की लंबे अरसे से पुरजोर पैरवी की जाती रही है। इसके पीछे पर्वतीय क्षेत्र के समग्र विकास, क्षेत्रीय संतुलन का तर्क राज्य सरकार के साथ ही स्थानीय जनता भी रखती रही है। दरअसल, पिछले लंबे समय से एनआइटी श्रीनगर का विवादों से नाता टूट नहीं रहा है। एनआइटी के लिए जिस क्षेत्र का चयन किया गया है, वहां की विषम परिस्थितियों और भूगर्भीय स्थिति का हवाला दिया जा रहा है। समिति ने इन बिंदुओं का विस्तार से परीक्षण किया है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख है कि जियो टेक्निकल सर्वे में प्रथम दृष्ट्या सुमाड़ी की भूमि को निर्माण कार्यों के लिए उचित बताया गया। लिहाजा, इस भूमि को अनुपयुक्त बताए जाने को लेकर विवाद की स्थिति अब खत्म हो सकती है। वैसे यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि सुमाड़ी गांव के नजदीक ही केंद्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर मेडिकल कॉलेज, जीबी पंत इंजीनियरिंग कॉलेज, औद्यानिकी विश्वविद्यालय समेत कई संस्थान संचालित हैं। ऐसे में भौगोलिक विषम परिस्थितियों का हवाला देकर सुमाड़ी में एनआइटी के स्थायी कैंपस के निर्माण में अड़ंगा नहीं लगना चाहिए।

आर्थिक आरक्षण कितना उपयोगी

संजय गुप्त

यह ठीक है कि आर्थिक आरक्षण सरकार के राजनीतिक हित साध सकता है, लेकिन क्या वह सामाजिक और राष्ट्रीय हितों को भी पूरा कर सकता है?

मोदी सरकार ने जिस राजनीतिक कौशल से अनारक्षित तबकों के लिए दस प्रतिशत आर्थिक आरक्षण का संविधान संशोधन विधेयक संसद से पारित कराया उसे उनका राजनीतिक ब्रह्मास्त्र कहा जा रहा है। इसलिए और भी, क्योंकि करीब-करीब सभी दल इस फैसले का समर्थन करने को बाध्य हुए। बावजूद इसके यह कहना कठिन है कि इस आरक्षण से देश की मूलभूत समस्याओं का समाधान होने वाला है। संविधान निर्माताओं ने जब सामाजिक रूप से पिछड़े और मुख्यधारा से कटे वंचित लोगों यानी अनुसूचित जातियों-जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की थी तो वह दस वर्ष के लिए थी, लेकिन उसे बढ़ाया जाता रहा। इसके बाद 1990 के आसपास सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से कमजोर लोगों यानी अन्य पिछड़ा वर्गों (ओबीसी) के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। इससे गैर आरक्षित वर्ग जिसे आम तौर पर सवर्ण कहा जाता है, यह महसूस करने लगा कि उसकी अनदेखी हो रही है। इसकी एक वजह यह भी रही कि ओबीसी आरक्षण सरकारी नौकरियों के साथ शिक्षण संस्थाओं में भी लागू हुआ।

धीरे-धीरे आरक्षित वर्ग वोट बैंक की राजनीति का जरिया बन गया। सभी राजनीतिक दल खुद को आरक्षित वर्ग का हितैषी साबित करने की होड़ में शामिल हो गए। एक समय जो भाजपा व्यापारियों और सवर्ण वर्ग में असर रखने वाली पार्टी मानी जाती थी उसने एससी-एसटी के साथ ओबीसी में भी अपनी पैठ बढ़ानी शुरू की। नरेंद्र मोदी के ओबीसी वर्ग से आने के कारण उनके प्रधानमंत्री बनने के बाद भाजपा का इस वर्ग के बीच आधार और मजबूत हुआ, लेकिन छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और राजस्थान में सत्ता गंवाने के बाद भाजपा को लगा कि अनारक्षित तबका उससे असंतुष्ट है। इसका कारण यह रहा कि मध्य प्रदेश और राजस्थान में सवर्णों ने आरक्षण के खिलाफ आंदोलन तो छेड़ा ही, भाजपा से अपनी नाराजगी भी जाहिर की। यह नाराजगी मुख्यतः एससी-एसटी कानून में बदलाव के सुप्रीम कोर्ट के आदेश को पलटने से उपजी। मप्र में कई स्थानों और खासकर ग्वालियर संभाग में भाजपा की हार का एक बड़ा कारण सवर्णों की नाराजगी माना गया। आर्थिक आरक्षण के फैसले के बाद यह माना जा रहा है कि मोदी सरकार सवर्णों की नाराजगी दूर करने और साथ ही यह संदेश देने में सफल रही कि उसे उनके भी हितों की भी चिंता है।

आर्थिक आरक्षण संबंधी 124वां संविधान संशोधन विधेयक महज दो दिनों में पारित होना मोदी सरकार की राजनीतिक सूझबूझ का उदाहरण है, लेकिन ऐसा नहीं है कि आर्थिक तौर पर कमजोर लोगों को आरक्षण देने की बात पहले न की गई हो। कई राजनीतिक दल समय-समय पर इसकी मांग करते रहे। कांग्रेस ने तो अपने घोषणा पत्र में इसका वादा किया था। मायावती ने मुख्यमंत्री रहते समय मनमोहन सरकार को आर्थिक आरक्षण के लिए चिट्ठी लिखी थी। नीतीश कुमार की सरकार ने भी आर्थिक आरक्षण के लिए एक आयोग का गठन किया था। इसी तरह जब आर्थिक आरक्षण की मांग को लेकर आंदोलन हुए जैसे गुजरात में पाटीदारों का, हरियाणा में जाटों का और महाराष्ट्र में मराठों का तब कई राजनीतिक दलों ने उन्हें अपना समर्थन प्रदान किया। आर्थिक आरक्षण पर संसद में बहस के दौरान विपक्ष ने सवाल तो उठाए, लेकिन कुल मिलाकर यही सवाल अधिक पूछा गया कि यह विधेयक पहले क्यों नहीं लाया गया, जबकि राजनीतिक दल राजनीतिक हित के ऐसे फैसले पहले भी लेते रहे हैं।

इस विधेयक पर राष्ट्रपति की मुहर लगते ही आर्थिक आरक्षण का कानून बन जाएगा, लेकिन इस कानून को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती मिल सकती है। एक याचिका तो दाखिल ही हो गई है। इसमें यह तर्क दिया गया है कि आर्थिक आरक्षण संविधान के मूल ढांचे के अनुकूल नहीं। सुप्रीम कोर्ट में आर्थिक आरक्षण कानून न टिक पाने की आशंकाओं को दूर करते हुए वित्त मंत्री अरुण जेटली ने स्पष्ट किया है कि इसके पहले आर्थिक आरक्षण की जो पहल हुई वह संविधान के अनुच्छेद 15-16 में संशोधन के बगैर की गई। इस बार संविधान संशोधन भी किया गया है। आर्थिक आरक्षण को लेकर जो सवाल उठ रहे हैं उनमें एक यह है कि आठ लाख रुपये की सालाना आमदनी संबंधी पात्रता का प्रावधान कितना उपयुक्त है? यह सवाल इसलिए उठा है, क्योंकि इस प्रावधान के तहत करीब 95 फीसद आबादी इस आरक्षण के दायरे में आ जाएगी।

आर्थिक आरक्षण पर बहस इसलिए भी हो रही है, क्योंकि सरकारी नौकरियां बढ़ने के बजाय कम हो रही हैं और शिक्षण संस्थानों में पहले से ही पर्याप्त सीटें नहीं हैं। इस बहस को निराधार नहीं कहा जा सकता, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि दस प्रतिशत आरक्षण से अब तक अनारक्षित रहे लोग लाभान्वित ही नहीं होंगे। यदि 49.5 प्रतिशत आरक्षण उपयुक्त है तो 59.5 प्रतिशत क्यों नहीं है? जहां तक आठ लाख सालाना आय सीमा का सवाल है तो यही सीमा ओबीसी आरक्षण में क्रीमी लेयर की है। अगर इतनी आय वाले ओबीसी वाले गरीब माने जा रहे तो अनारक्षित तबके के लोगों को क्यों नहीं माना जा सकता? 1993 में सुप्रीम कोर्ट ने क्रीमी लेयर की आय सीमा एक लाख रुपये तय की थी। यह उन्हीं राजनीतिक दलों के दबाव में बढ़ी जो आज यह कह रहे हैं कि आठ लाख सालाना आमदनी वालों को गरीब कैसे कहा जा रहा है? आखिर ऐसी आपत्ति तब क्यों नहीं उठाई गई जब क्रीमी लेयर की आय सीमा में वृद्धि की गई? तब क्यों नहीं कहा गया कि गरीबों की प्रतिदिन की आमदनी तो 50 रुपये रुपये से कम है?

इस पर आश्चर्य नहीं कि आर्थिक आरक्षण का फैसला होते ही आयकर सीमा बढ़ाने की मांग हो रही है। यह सही है कि आर्थिक आरक्षण में आठ लाख रुपये की सालाना आमदनी परिवार की तय की गई है, व्यक्तिगत नहीं, लेकिन इसके बावजूद इसका औचित्य नहीं कि आयकर सीमा ढाई लाख रुपये ही बनी रहे। शायद इसी कारण सीआइआइ की ओर से आयकर सीमा बढ़ाने की मांग की गई। पता नहीं इस पर कितना ध्यान दिया जाएगा, लेकिन यह ध्यान रहे तो बेहतर कि आर्थिक आरक्षण भले ही तात्कालिक तौर पर राजनीतिक और सामाजिक सोच को बदलने वाला फैसला हो, इससे मेधा की अनदेखी होती है।

सैद्धांतिक तौर पर आर्थिक तौर पर पिछड़े लोग भी आरक्षण के हकदार बनते हैं, लेकिन बड़ा सवाल यह है कि क्या आरक्षण का बढ़ता दायरा देश की मूल समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होगा? यह विडंबना ही है कि इस पर कोई बहस नहीं हो रही कि आखिर आरक्षण का बढ़ता दायरा कम या खत्म कैसे होगा? स्पष्ट है कि आर्थिक आरक्षण को राजनीतिक रूप से मास्टर स्ट्रोक बताए जाने के बाद भी यह सवाल अपनी जगह कायम है कि आरक्षण देश को आगे ले जाने में कितना सहायक बनेगा। यह ठीक है कि आर्थिक आरक्षण सरकार के राजनीतिक हित साध सकता है, लेकिन क्या वह सामाजिक और राष्ट्रीय हितों को भी पूरा कर सकता है? क्या इससे मेधा का सम्मान होगा और उसका पलायन रुकेगा? वास्तव में ऐसे एक नहीं, अनेक सवाल हैं। इनमें प्रमुख यही है कि क्या युवाओं की बड़ी आबादी के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर हैं?

response@jagran.com

आदरणीय होने के खतरे

हास्य-व्यंग्य

साकेत सूर्येश

भीड़ भरे हॉल में यदि एक कुर्सी रखी हो तो लेखक से उम्मीद नहीं की जाएगी कि वह चीते की फुर्ती से उस पर काबिज हो जाए

लेखक होने और लिखने का शौक रखने में वही अंतर है जो नेता होने और नेतागीरी करने में है। नेता होना चारित्रिक उत्कर्षता और सामाजिक स्वीकार्यता एवं सम्मान का सूचक है। नेतागीरी व्यवसाय है। नेता होना व्यवहार है, स्वभाव है। नेता का सम्मान होता है। वैसे ही लिखने वाले का सम्मान होता है, लेखक अपने लेखन के निरीह अस्तित्व में डूबता-उतरता रहता है। लिखना आराम का शगल है, लेखक होना संघर्ष का सूचक हैं। लिखने में समस्या नहीं है। लिखने का स्वभाव बेलाग है, अल्हड़ है। लेखक होना वही, गांभीर्य का भाव है, गरीबी का भाव है। जब मित्र कहते हैं कि 'यह लिखते हैं' तो उसमें सराहना-सम्मान का भाव छिपा होता है। जब वही मित्र यह जानते हुए कि आप प्रकाशित हो गए हैं, हो रहे हैं, कहता है, 'यह लेखक हैं' तो लोगों के मुख पर सहसा सद्भावना और सहानुभूति का मिश्रित भाव उमड़ जाता है। लिखने वाला आदरणीय होता है, लेखक के लिए आदरणीय होना प्रतिबंधित है।

परसाई जी लिखते हैं, 'लेखक को आदरणीय होने से बचना चाहिए। आदरणीय हुआ कि गया। ... मैं साहित्य में ही रहता था, रहना भी चाहता था। मैंने तय किया कि अपने को कभी आदरणीय नहीं होने दूंगा। जब-जब आदरणीय होने का खतरा पैदा होता, मै कोई बेवकूफी या उचक्कापन कर जाता।' मेरी ऐसी कोई समस्या नहीं है। मध्यवर्गीय बचपन और सरकारी कॉलेज की अभिजात्य-शून्य अभियांत्रिकी ने उचक्केपन का ऐसा प्रभावशाली टीका लगाया है कि व्यक्तित्व आदरणीय होने से सदा सुरक्षित है। लेखक जब प्रकाशित होता है तो सहसा ही खिलंदड़ी, निर्दोष युवती से संस्कार-संकुचित विवाहिता बन जाता है। अपेक्षा रहती है वह छिछोरापन छोड़ संस्कारी वधू के समान प्रकाशक श्वसुर और प्रमोटर सास का मान रखेगा। ..उससे बुद्धिजीवी होने की अपेक्षा भी रखी जाएगी। भीड़ भरे हॉल में यदि एक कुर्सी रखी होगी तो लेखक से उम्मीद नहीं रखी जाएगी कि वह चीते की फुर्ती से उस पर काबिज हो जाए।

ठंड में कुकड़ी बन जाने पर भी लेखक-सुलभ संस्कार के अनुसार वह मंकी कैप और कंबल में सार्वजनिक रूप से दृष्टिगोचर नहीं होना चाहिए। जैसे नवविवाहिता को सिंदूर, घूंघट, चूड़ियों से लैस होना चाहिए, लेखक को शेरवानी, कलम और ऐनक से लैस होना चाहिए। जानकार कहते हैं हिंदी साहित्य में लेखकों के आदरणीय होने की परंपरा आपातकाल के बाद शुरू हुई जब प्रसिद्ध और गणमान्य लोग लेखन में उतरने लगे। दिनकर के गीत को जयप्रकाश जी ने युद्धघोष क्या बनाया, हिंदी को सत्ता का अप्रत्याशित विरोध झेलना पड़ा। आदरणीयत्व से मुक्त लेखक टमाटर उगाने के लिए हाशिए पर धकेले गए और वीरांगना के स्तुतिकार ब्रेड, चूहा और फ्रिज जैसी कविताएं लिखने वाले पुरस्कृत होते गए। हिंदी सत्ता की संटियां खाती रही और न समझ में आने वाले लेखकों के प्रभाव में जनता भाषा और साहित्य से दूर होती गई।

शरद जोशी और परसाई जैसे लेखक बुद्धिजीवी होने और आदरणीय होने से बचते थे। व्यवस्था यूं बदली कि आदरणीय और बुद्धिजीवी होना लेखक की आवश्यक योग्यता बन गई। शासन को ऐसे लेखक बड़े भाते थे जो पाठकों के अभाव को सत्ता के प्रभाव से भरते थे। पुस्तकें न बिकें तो सरकारी पुस्तकालयों मे पहुंच जाती थीं, पांच सितारा में पुस्तक समीक्षा का आयोजन करने वाले बुद्धिजीवी-कम-लेखक पर प्रतिष्ठित अखबारों में संघर्ष कथा लिखी जाती थी। टीवी चैनलों पर बुद्धिजीवी-लेखिका बताती हैं कि सत्ता के दबाव में किस प्रकार उनकी पुस्तक को बाजार की उपेक्षा सहनी पड़ रही है। यही संदेश हर साहित्यिक गोष्ठी में जाकर सुनाया जाता जहां वे आमंत्रित वक्ता होते थे। ये बुद्धिजीवी परसाई जी की टिटिहरी नहीं थे जो आसमान की ओर पांव उठाकर औंधा लेटता है और आसमान को टेक देने के मुगालते में रहते हैं। यह कभी भी राजनीति के निर्देश पर अपनी ब्रेड और चाय की कविता पर मिले पुरस्कार लौटाकर सत्ता और समाज की व्यवस्था बदलने का दम रखते हैं। इसी व्यवस्था को ताजा लेखक बना लिखने वाला इको-सिस्टम कहता है। क्योंकि जब गणमान्य लेखक व्यवस्था की तथाकथित उपेक्षा को झेलता हुआ, एक शहर से दूसरे लेक्चर सर्किट चलाता है, अनादरणीय लेखक अगले वेतन का विचार करता है और मेट्रो में प्रेमी युगलों की दृष्टि से स्वयं को बचाकर एक टांग पर स्वयं को संतुलित करके टमाटर उगाने वाले लेखकों को द्रोण मानकर स्वयं एकलव्य बनकर साहित्य की समिधा में अंगूठा डाल देता है। इस टिटिहरी के पांव पर कोई आसमान नहीं टिकता।

response@jagran.com

ऊर्जा

सच्चा सैनिक

किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा, एकता और अखंडता बनाए रखने में सैनिकों का अहम योगदान होता है। सैनिक अपने घर-परिवार से दूर रहकर जिस निष्ठा और समर्पण के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वैसा उदाहरण कम ही देखने को मिलता है। सैनिक सीमा पर तैनात रहते हैं, तभी देशवासी चैन की नींद सो पाते हैं। हालांकि केवल सैनिक का ही नहीं, बल्कि देश के प्रत्येक नागरिक का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान रखे और अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वहन करे। एक नागरिक का अपने कर्तव्यों का पालन करना राष्ट्र के प्रति सम्मान को प्रदर्शित करता है।

वास्तव में सच्चा सैनिक वही है जो अपने देश के लिए अपना सब कुछ अर्पित करने की भावना रखता हो। प्रत्येक नागरिक के मन में अपनी मातृभूमि के ऋण को चुकाने के लिए बलिदान की भावना होनी चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति केवल सेना में सैनिक बनकर ही नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और अभिरुचि के अनुसार देश की सेवा व विकास में अपना योगदान कर सच्चे सैनिक के रूप में कर सकता है। ऐसा भी नहीं है कि देश सेवा के लिए हमें कोई बड़ा या महान कार्य ही करना हो, बल्कि उपलब्ध संसाधनों व अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार हम किसी भी रूप में देश की सेवा कर सकते हैं। यानी प्रत्येक नागरिक को अपने मन में देशप्रेम की भावना जागृत कर अपनी योग्यता और कौशल से देश सेवा करनी चाहिए। देश के प्रति अपने कर्तव्य और दायित्व का बोध किसी के द्वारा कराने की जरूरत नहीं होती, बल्कि देश सेवा का जुनून हर नागरिक की अंतरात्मा में रचा-बसा होना चाहिए। ऐसी भावना रखने और कर्म करने वाला ही सच्चा सैनिक है। किसी भी नागरिक के लिए देशहित सबसे पहले होना चाहिए। यदि किसी कार्य से देश का अहित हो रहा हो तो हमें वह कार्य कदापि नहीं करना चाहिए। आदर्श और खुशहाल राष्ट्र का सपना तभी साकार हो सकता है जब प्रत्येक नागरिक स्वार्थ को त्यागकर ईमानदारी, विनम्रता, परोपकार जैसे गुणों को अपने जीवन में स्थान दे। यदि हम इन सभी गुणों को अपने जीवन में आत्मसात कर लें तो न केवल हमारे परिवार, समाज व राष्ट्र में शांति स्थापित होगी, बल्कि हम नित नई तरक्की की ओर अग्रसर होंगे।

शंभूनाथ पांडेय

तथ्य-कथ्य | सीएनजी वाहनों का बढ़ता दायरा (संख्या 1-12-2018 तक)

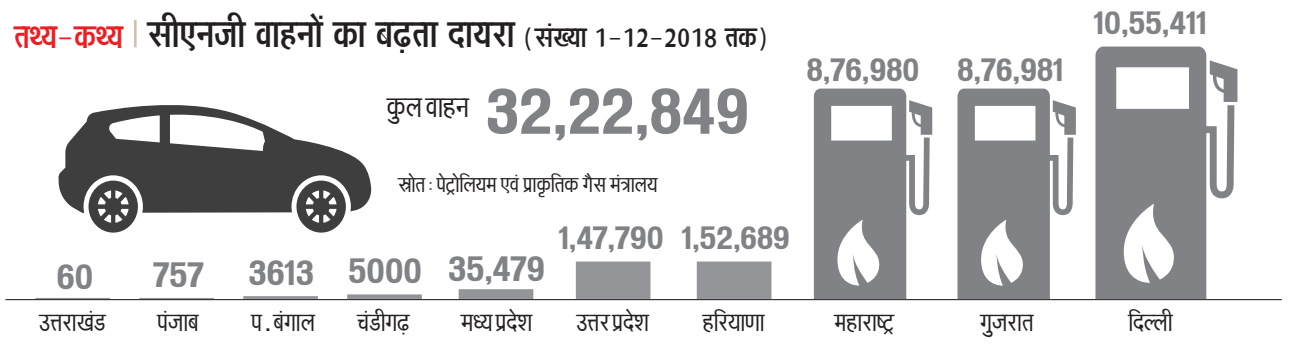

छिटक जाएगा सौरमंडल

मुकुल व्यास

आकाशगंगाओं की टक्कर से हमारे सौरमंडल की स्थिति बदल सकती है, लेकिन इसमें अभी अरबों वर्ष का वक्त लगेगा

हमारे पड़ोस की एक आकाशगंगा हमारी ग्रह आकाशगंगा मिल्की वे के नजदीक आ रही है। यदि दोनों आकाशगंगाओं के बीच टक्कर हुई तो हमारा सौरमंडल छिटककर सुदूर अंतरिक्ष में पहुंच जाएगा। वैज्ञानिकों का कहना है कि 'लार्ज मैगेलेनिक क्लाउड' नामक आकाशगंगा के मिल्की वे से टकराने पर हमारे समीपवर्ती अंतरिक्ष में बड़े पैमाने पर तबाही होगी। इस भिड़ंत के बाद हमारी आकाशगंगा का निष्क्रिय ब्लैकहोल सक्रिय हो सकता है। यह ब्लैकहोल अपने सामान्य आकार से दस गुना बड़ा हो सकता है। इस ब्लैकहोल से तीव्र ऊर्जा वाला विकिरण आसपास अंतरिक्ष में फैल जाएगा।

ब्लैकहोल ब्रह्मांड ऐसे बिंदु हैं जहां गुरुत्वाकर्षण इतना प्रबल होता है कि वहां से कुछ भी बाहर नहीं जा सकता। वहां से न तो चट्टानें और न ही गैस बाहर निकल सकती हैं। और प्रकाश भी बाहर नहीं आ सकता। वैज्ञानिकों के अनुसार इस ब्रह्मांडीय आतिशबाजी का हमारी पृथ्वी पर कोई असर नहीं पड़ेगा, लेकिन ऐसा अनुमान है कि इस टक्कर के बाद हमारा सौरमंडल उड़ता हुआ अंतरिक्ष में कहीं दूर पहुंच जाए, लेकिन इससे डरने की जरूरत नहीं है। ऐसा होने में कम से कम दो अरब वर्ष का समय है, लेकिन यह टक्कर मिल्की वे से एंड्रोमेडा आकाशगंगा की संभावित टक्कर से पहले हो सकती है। एंड्रोमेडा हमारी सबसे करीबी आकाशगंगा है और वह आठ अरब वर्ष बाद हमारी आकाशगंगा से टकरा सकती है। ब्रह्मांड में मिल्की वे जैसी आकाशगंगाओं के आसपास छोटी-छोटी 'सैटेलाइट' आकाशगंगा मौजूद हैं जो अपने मेजबानों की परिक्रमा करती हैं। लेकिन कभी-कभी वे मेजबान आकाशगंगा के केंद्र की तरफ बढ़ने लगती हैं। इससे प्रचंड भिड़ंत होती है और मेजबान आकाशगंगा छोटी आकाशगंगाओं को हजम कर जाती है।

हमारी मिल्की वे आकाशगंगा के आसपास तैरने वाली सैटेलाइट आकाशगंगाओं में लार्ज मैगेलेनिक क्लाउड आकाशगंगा सबसे चमकीली है। यह डेढ़ अरब वर्ष पहले हमारी आकाशगंगा के पड़ोस में आई थी। यह मिल्की वे से करीब 1,63,000 प्रकाशवर्ष दूर है। इससे पहले वैज्ञानिकों ने ऐसा भी सोचा था कि यह छोटी आकाशगंगा अरबों वर्ष तक मिल्की वे की परिक्रमा करती रहेगी या हमारी आकाशगंगा के गुरुत्वाकर्षण प्रभाव से दूर चली जाएगी। अभी इस दिशा में तमाम शोध किए जा रहे हैं।

ब्रिटेन में डरहम यूनिवर्सिटी के शोधकर्ता डॉ. मेरियस काटन का कहना ने कहा कि मिल्की वे आकाशगंगा द्वारा लार्ज मैगेलेनिक क्लॉउड को डकारे जाने के बाद हमारी आकाशगंगा में बड़ी तबाही होगी। इसके मध्य में स्थित ब्लैकहोल सक्रिय होकर 'क्वाजार' में बदल जाएगा। क्वाजार आकाशगंगा का नाभिक है जो बहुत चमकीला होता है और जहां से शक्तिशाली रेडियो तरंगें निकलती हैं। ब्लैकहोल के सक्रिय होने के पश्चात उसके बाहरी छोर से तीव्र ऊर्जा के विकिरण की शक्तिशाली बौछार उत्पन्न होंगी। कॉटन के अनुसार इससे हमारे सौरमंडल पर प्रभाव नहीं पड़ेगा, लेकिन इस बात की अल्प संभावना भी है कि आकाशगंगाओं की टक्कर के बाद हम बच नहीं पाएंगे।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

आपसी खींचतान

आधार के पंजीकरण और इससे संबंधित अन्य सेवाओं को लेकर सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के दो विभागों की आपसी खींचतान अब चरम पर पहुंच गई है। मंत्रालय के तहत आने वाले सीएससी एसपीवी के ग्रामीण उद्यमियों को आधार के पंजीकरण और अपडेशन सेवाएं देने का अधिकार मिला था। देश के ढाई लाख सीएससी के लिए यह आमदनी का प्रमुख स्रोत बन गया था। लेकिन पिछले वर्ष अचानक इसी मंत्रालय के तहत आने वाले यूआइडीएआइ ने सीएससी से ये सेवाएं वापस ले लीं। सीएससी के विस्तार में न सिर्फ मंत्रालय, बल्कि पीएमओ भी खासी रुचि दिखा रहा था। बावजूद इसके यूआइडीएआइ ने यह फैसला किया। दिलचस्प बात यह है कि सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री रविशंकर प्रसाद तक सीएससी को ये सेवाएं वापस दिलाने के प्रयासों में जुटे हैं। लेकिन आधार प्रमुख हैं कि मानते ही नहीं। बाबुओं में यह आम चर्चा है कि राजस्व सचिव बनने के बाद तो आधार प्रमुख के लिए आधार पंजीकरण और अपडेशन के लिए बैंकों और डाकघरों को मिलने वाला राजस्व ज्यादा फायदेमंद दिख रहा है, क्योंकि अंततः इसकी आमदनी सरकारी खजाने में ही जा रही है। और वैसे भी राजस्व को लेकर कितना दबाव है इस वर्ष, यह सब जानते ही हैं।

राजरंग

अब क्या करेंगें पांडा?

लोकसभा चुनाव में 100 दिनों से भी कम समय बचा है, लेकिन ओडिशा की केंद्रपाड़ा सीट से सांसद रहे बैजयंत जय पांडा किस पार्टी में जाएंगे, इस पर सस्पेंस कायम है। बीजद से उनके अलग होने का बाद कयास लगाए जा रहे थे कि वह भाजपा में शामिल हो सकते हैं, लेकिन अब ऐसा लग रहा है कि उनकी भाजपा से भी दूरी बढ़ गई है। पिछले दिनों अपनी किताब के विमोचन में भाजपा की राजनीति को लेकर पांडा ने यह कहते हुए सवाल उठा दिए कि भाजपा ने दो साल पहले बहुत जोश के साथ ओडिशा में राजनीति को धार दी थी, पर अब उसका जोश खत्म हो गया है और ऐसा लग रहा है कि पार्टी ने बीजद के सामने सरेंडर कर दिया है। दूसरी ओर यह चर्चा है कि ओडिशा से आने वाले केंद्र सरकार में कैबिनेट मंत्री और भाजपा की ओर से मुख्यमंत्री पद के अघोषित दावेदार 'प्रधान' की वजह से जय पांडा की भाजपा में एंट्री नहीं हो पाई है। ऐसी अटकलें भी जोरों पर हैं कि नवीन पटनायक ने अपने संबंधों के हवाले से जय पांडा की भाजपा में एंट्री रुकवाई है। बहरहाल, कारण चाहे जो हो पर ऐसा लग रहा है कि उनका भाजपा में जाना फिलहाल टल गया है।

पूर्व सीएम की मौजूदगी के मायने

दिल्ली के एक कार्यक्रम में मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री कमलनाथ के साथ भाजपा के वरिष्ठ नेता और पूर्व मुख्यमंत्री बाबूलाल गौर की मौजूदगी चर्चा में है। यह इसलिए भी है, क्योंकि मध्य प्रदेश में भाजपा और कांग्रेस के बीच तल्खी लगातार बढ़ी हुई है। खासकर विधानसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के चुनाव में कांग्रेस ने जिस तरीके से भाजपा की पूरी रणनीति को ध्वस्त कर अपने प्रत्याशियों को चुनाव जिता लिया, उसे भाजपा की प्रदेश में बड़ी हार के तौर पर देखा जा रहा है। हालांकि हरफनमौला स्वभाव के गौर का यह अंदाज कोई नया नहीं है। वह इससे पहले भी अपने बयानों को लेकर पार्टी को कटघरे में खड़े करते रहे है। वैसे भी लोकसभा चुनाव सामने है। ऐसे में गौर की यह मुलाकात कुछ भी रंग खिला सकती है। फिलहाल यह तो समय बताएगा।

बॉस की रहे नजर

पेशेवर दुनिया में बॉस के सामने अपनी काबिलियत के साथ हर मौके पर खुद को भरोसेमंद साबित करते रहना सामान्य बात है। मगर राजनीति में भी पेशवर दुनिया का यह फार्मूला अहम बनता जा रहा है। नेताओं को भी अब अपनी प्रासंगिकता और क्षमता का अहसास कराते रहने के लिए इसी फार्मूले का सहारा लेना पड़ रहा है। हाल में संपन्न हुए संसद के शीतकालीन सत्र में अहम मौकों पर कुछ मंत्रियों में इस फार्मूले को लेकर जोश ज्यादा ही दिखा। सवर्ण गरीबों के आरक्षण संबंधी संविधान संशोधन विधेयक पर राज्यसभा में चर्चा के दौरान तो आलम यह रहा कि पहली पंक्ति से लेकर तीसरी पंक्ति तक में बैठे तीन मंत्रियों में तो बॉस के सामने खुद को सबसे काबिल साबित करने की होड़ ही लगी थी। बॉस के सामने विपक्षी खेमे पर निशाना साधने की तीनों की होड़ इतनी प्रतिस्पर्धी रही कि संसदीय परंपराओं को लेकर मंत्री होते हुए भी इन्हें कोई फिक्र नहीं दिखी। शायद इसीलिए उन्हें इसका अहसास ही नहीं हुआ कि मंत्री होते हुए भी वे चर्चा के दौरान हंगामा बिग्रेड के सांसदों में शामिल दिखाई दे रहे थे। मगर सियासत करनी है तो संसदीय परंपराओं की भला कैसी फिक्र, वह भी तब जब चुनाव सिर पर हों।

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय नि